E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi, Assistant Professor, Department of Sanskrit, Dr. Shyama Prasad Mukherjee University, Ranchi

अभिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

आचार्य अभिनवगुप्त रससूत्र-"विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्तिः" की व्याख्या कर अभिव्यक्तिवाद की स्थापना की है। आचार्य अभिनवगुप्त के अनुसार-"लोक में प्रमदा आदि के द्वारा (रत्यादि) स्थायीभाव के अनुमान करने में निपुण सामाजिकों को काव्य और नाटक में उन्हीं कारणत्व आदि (कारण, कार्य, सहकारी आदि) को छोड़कर विभावन आदि व्यापार से युक्त होने से अलौकिक विभाव आदि शब्दों से व्यवहृत किये जाने वाले (व्यवहार्य) उन्हीं से 'ये मेरे ही हैं' 'ये शत्रु के ही हैं, 'ये तटस्थ के ही हैं', 'ये मेरे नहीं हैं', 'ये शत्रु के नहीं हैं', 'ये तटस्थ के भी नहीं हैं इस प्रकार के सम्बन्ध विशेष के स्वीकार अथवा परिहार (निषेध) करने के नियम का निश्चय न होने से साधारणरूप से प्रतीत होने वाले (ज्ञायमान) से अभिव्यक्त सामाजिकों में वासनारूप स्थित रत्यादि स्थायीभाव नियत प्रमाता (व्यक्तिगत सामाजिक) के रूप में स्थित होने पर भी साधारण उपायों के बल से उसी समय परमित प्रमातृभाव के नष्ट हो जाने के कारण आविर्भूत हो गया है वेद्यान्तर के सम्पर्क से शून्य अपरिमित प्रमातृभाव जिसका, ऐसे प्रमाता के द्वारा समस्त सहृदयों में समान अनुभव से युक्त सामान्य रूप से अपने आकार के समान अभिन्न रूप से अनुभूत होता हुआ आस्वादमात्रस्वरूप वाला विभाव आदि की स्थिति पर्यन्त रहने वाला, पानक रस के समान आस्वाद्यमान, सामने परिस्फुरित होता हुआ सा हृदय में प्रविष्ट होता हुआ सा, सारे अंग को स्पर्श करता हुआ सा, अन्य सब को तिरोभूत करता हुआ सा, ब्रह्मास्वाद के समान आनन्द का अनुभव करता हुआ सा, अलौकिक चमत्कार को उत्पन्न करने वाला श्रृंगार आदि रस कहा जाता है"-

"लोके प्रमदादिभिः स्थाय्यनुमानेऽभ्यासपाटवतां काव्ये नाट्ये च तैरेव कारणत्वादिपरिहारेण विभावनादिव्यापारवत्त्वादलौकिकविभावादिशब्दव्यवहार्य्यैममैवेते, शत्रोरेवैते तटस्थस्यैते, न ममवैते, न

शत्रोरेवैते, न ताटस्थस्यैवेते, इति सम्बन्धवियेषस्वीकारपरिहारनियमानध्यवसायात् साधारण्येन प्रतीतैरभिव्यक्तः सामाजिकानां वासनात्मकतया स्थितः स्थायी रत्यादिको नियतप्रमातृगतत्वेन स्थितोऽपि साधारणोपायबलात्, तत्कालविगलितपरमितप्रमातृभाववशोन्मिषितवेद्यान्तरसम्पर्कशून्यापरमितभावेन प्रमात्रा सकलसहृदयसंवादभाजा साधारण्येन स्वीकार इव भिन्नोऽपि गोचरीकृतश्चर्व्यमाणैकप्राणः विभावादिजीवितावधिः पानकरसन्यायेन चर्व्यमाणः, पुर इव परि स्फुरन, हृदयमिव प्रविशन्, सर्वाङ्गीणमिवालिङ्गन्, अन्यत्सर्वमिवतिरोदधत् ब्रह्मास्वादमिवानुभावयन् अलौकिकचमत्कारकारी श्रृङ्गारादिको रसः"।

वस्तुतः अभिनवगुप्त 'अभिव्यक्तिवादी' आचार्य हैं । उनका मत 'अभिव्यक्तिवाद' के नाम से प्रसिद्ध है जिसे आलङ्कारिक मत माना गया है। उनके मत में 'संयोग' पद का अर्थ 'व्यंग्य-व्यंजक भाव सम्बन्ध' और 'निष्पत्ति' पद का अर्थ 'अभिव्यक्ति किया है। उनके मतानुसार विभावादि के साथ 'व्यंग्य-व्यंजक भाव' सम्बन्ध से रत्यादि स्थायीभाव रस के रूप में अभिव्यक्त होता है।

अभिनवगुप्त ने भट्टनायक के 'भुक्तिवाद' से प्रेरणा लेकर 'अभिव्यक्तिवाद' की स्थापना की है। उनका कहना है कि व्यंजना के द्वारा सकलविघ्नविनिर्मुक्त संविद् की प्राप्ति होती है जिसे भोग का आस्वाद कहते हैं। यही 'भोग' भट्टनायक का भोजकत्व व्यापार या भोगीकरण है। भट्टनायक के अनुसार भावकत्व व्यापार के द्वारा विभावादि का साधारणीकरण होता है जिसे अभिनवगुप्त व्यंजना व्यापार कहते हैं। इसके द्वारा रस का भोग अर्थात् रस की अभिव्यक्ति या रसास्वादन होता है। इस प्रकार भावकत्व व्यापार व्यंजनाशक्ति का प्रथम उन्मेष है और द्वितीय उन्मेष है भोगीकरण या रसचर्वणा।

अभिनवगुप्त ने सामाजिक को दृष्टि में रखकर रस का विवेचन किया है। सामाजिक के हृदय में रत्यादि स्थायीभाव वासना के रूप में विद्यमान रहते हैं। यही स्थायीभाव ही सामाजिक के हृदय में अभिव्यक्त या उद्बुद्ध होता है, लोक में प्रमदा आदि के द्वारा अनुमान आदि में निपुण सहृदयों के हृदय में जिस प्रकार रत्यादि की अभिव्यक्ति होती है उसी प्रकार काव्य और नाटक में भी सहृदयों के हृदय में उन्हीं प्रमदा आदि के द्वारा रत्यादि भावों की अभिव्यक्ति होती है। किन्तु काव्य या नाटक में ये प्रमदा आदि कारण, कार्य और सहकारी विभाव, अनुभाव और संचारीभाव के नाम से अभिहित किये जाते हैं।

इन्हीं विभावादि के द्वारा सामाजिकों के हृदय में वासना के रूप में स्थित रत्यादि स्थायीभाव व्यंग्य-व्यंजक भाव सम्बन्ध से शृङ्गारादि रस के रूप में अभिव्यक्त होता है। यही रसाभिव्यक्ति या रसचर्वणा है। उस समय रसाभिव्यक्तित होने पर सामाजिक इतना आत्मविभोर हो जाता है कि उसे यह ज्ञान नहीं रहता कि ये विभावादि 'मेरे ही हैं' अथवा 'शत्रु के ही हैं' अथवा 'तटस्थ के ही है' अथवा 'न मेरे ही हैं', 'न शत्रु के ही हैं' और 'न तटस्थ के ही हैं'। इस प्रकार सम्बन्ध विशेष का निश्चय न होने से सामान्य रूप से 'यह कामिनी है' इस प्रकार की प्रतीति होती है। भाव यह कि यदि मान लिया जाय कि ये विभावादि मेरे हैं तो 'अन्य सामाजिकों के समक्ष अपनी रति आदि का प्रकाशन अनुचित है, इस प्रकार लज्जा आदि का अनुभव होगा, रसास्वादनभाव तो दूर रहा'। यदि 'ये मेरे शत्रु के हैं' इस प्रकार की प्रतीति हो तो विष का आविर्भाव होने से रसास्वादन की संभावना ही नहीं रहेगी। इसी प्रकार यदि तटस्थ में सम्बन्ध की प्रतीति मानते हैं तो अपने में उसके अभाव का ज्ञान होने से रसास्वादन अत्यन्त असंगत होगा। इस प्रकार सामान्य कामिनी के रूप में प्रतीति मानी जाती है।

इस प्रकार सामाजिक के हृदय में वासना के रूप में विद्यमान स्थायीभाव नियत प्रमातृगत अर्थात् व्यक्ति विशेष में स्थित होने पर भी व्यक्ति विशेष के सम्बन्ध से रहित विभावादि के द्वारा काव्य या नाटक में उनका साधारणीकरण हो जाता है जिससे अन्य वेद्य वस्तुओं के ज्ञान से रहित अर्थात् वेद्यान्तरसम्पर्कशून्य की स्थिति हो जाती है, उससे स्वगत, परगत तथा तटस्थगत भेद से रहित हो जाता है। उस समय राम और सीता में व्यक्तिगत विशेषताएं हटकर साधारण पुरुष और साधारण स्त्री के रूप में भान होता है; और उसके साथ रत्यादि भावों का भी साधारणीकरण हो जाता है। समस्त सामाजिकों के हृदय में समान अनुभूति होती है। उस समय सामाजिक का व्यक्तित्व अपरिमित हो जाता है, परमित प्रगतिभाव विगलित हो जाता है। उसकी व्यक्तिगत भावना मिट जाती है और तब उसे रस की अनुभूति (आस्वादन) होता है।

अब प्रश्न यह है कि ररा आस्वादरूप है और रत्यादि भावों का ही रस के रूप में आस्वादन होता है तो जब रत्यादि का (रस के रूप में) ही आस्वादन होता है तो रस का आस्वादन कैसे कहा जाता है? इस प्रकार आस्वाद्य और आस्वादन के भेद का निराकरण करते हुए कहते हैं कि यद्यपि सामाजिक को

रत्यादिभाव आस्वाद रूप में अपने से अभिन्न रूप में अनुभूत होता है तथापि इसे आस्वादन का विषय आस्वाद्य मान कहा जाता है। भाव यह कि रस आस्वाद्य है, उसका आस्वादन होता है, फिर भी यह आस्वादमात्र रूप कहा जाता है क्योंकि जैसे ज्ञान ज्ञेय से भिन्न होने पर भी ज्ञेय को ज्ञान का स्वरूप होने से ज्ञेय माना जाता है अर्थात् जिस प्रकार योगाचार मत में ज्ञान स्वरूप विषय को ज्ञेय कहा जाता है उसी प्रकार आनन्दात्मक आस्वादरूप रस आस्वाद्यमान कहा जाता है अर्थात् जिस प्रकार ज्ञान और ज्ञानस्वरूप (ज्ञान विषय) ज्ञेय में कोई तात्त्विक भेद नहीं होता उसी प्रकार रस और रसरूप आस्वाद तथा आस्वाद्यमान में कोई तात्त्विक भेद नहीं है। इस प्रकार रस का स्वरूप आस्वादनमात्र ही है और रस का आस्वादन उसी समय तक होता है जब तक विभावादि रहते हैं अर्थात् विभावादि के न रहने पर रसास्वादन नहीं होता। इसी प्रकार रस आस्वादन उसी प्रकार होता है जिस प्रकार पानक-रस का आस्वादन होता है। तात्पर्य यह कि जिस प्रकार इलायची, कालीमिर्च, शक्कर, कपूर आदि के मिश्रण से निर्मित पानक-रस का इलाइची आदि के रस (स्वाद) से विलक्षण आस्वाद होता है उसी प्रकार विभावादि रूप व्यंजक सामग्री से अभिव्यक्त रस का विभावादि से विलक्षण अलौकिक आस्वादन होता है जिसे अनिर्वचनीय रसास्वाद कहा गया है। इस प्रकार रस का आस्वाद पानक-रस के समान विलक्षण, अलौकिक एवं अनिर्वचनीय होता है।

इस प्रकार काव्य और नाटक के द्वारा यह आस्वाद्यमान रस सहृदयों के हृदय के लौकिक जीवन के अनुभवों से विलक्षण रूप में चमत्कृत करते हैं, उस रसानुभव काल में सहृदय को ऐसा लगता है कि मानो वह साक्षात् रूप में सामने परिस्फुटित हो रहा है, उसके हृदय में प्रविष्ट सा हो रहा है, समस्त अंग-प्रत्यंग में आलिंगन करता हुआ सा प्रतीत हो रहा है, और संसार की समस्त वस्तुओं को तिरोभूत सा कर रहा है तथा ब्रह्मसाक्षात्कार के समान आनन्द का अनुभव कर रहा है। इस प्रकार यह रस अलौकिक आनन्द प्रदान करने वाला अलौकिक चमत्कारजनक है ।

इस प्रकार अभिनवगुप्त के मतानुसार मानव के हृदय में रत्यादि स्थायीभाव वासना के रूप में विद्यमान रहते हैं। यह रत्यादि रूप (स्थायीभावात्मक) मनोवृत्ति 'यह मेरे हैं', 'यह दूसरे के हैं', 'यह उदासीन के हैं' इस प्रकार के भावों से रहित काव्य एवं नाट्य की महिमा एवं प्रयोग-परम्परा के प्रभाव

से साधारणीकरण की भूमि प्राप्त कर सामाजिकों के हृदय को व्यक्तिविशेष की सीमा से हटकर लौकिक कारणादि से विलक्षण अलौकिक विभावादि के द्वारा सहृदयसंवेद्य, चमत्कारैकप्राण, स्वयंप्रकाश, आनन्दमात्रस्वरूप अखण्ड रस की अनुभूति होती है। उस समय अन्य किसी ज्ञेय वस्तु का संस्पर्श नहीं रहता (वेद्यान्तरसम्पर्कशून्य)। यह अनुभूति ही आस्वाद है जिसमें ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय का भेद अवभासित नहीं होता, यह ब्रह्मास्वादसहोदर है, यह लोकिक चमत्कारात्मक आस्वाद है यह आस्वाद रस से भिन्न नहीं, बल्कि रसरूप है, रस ही आनन्द है, और आनन्द ही रस है, यही आस्वाद है और आस्वाद ही रस है।

रस की अलौकिकता-रस की अलौकिकता को स्पष्ट करते हुए आचार्य मम्मट का अभिमत है-"वह रस कार्य नहीं है, (क्योंकि कार्य मानने से) विभावादि का नाश होने पर भी उसको स्थिति सम्भव हो जायगी। वह ज्ञाप्य भी नहीं है, क्योंकि वह पूर्वसिद्धि अर्थात् पहिले से विद्यमान नहीं है। अपितु विभावादि से व्यंजित और आस्वादनीय (चर्वणा के योग्य) है। कारक और ज्ञापक के अतिरिक्त अन्यत्र कहाँ देखे जाते हैं? तो यह भी ठीक नहीं; (ऐसा कहा जाय); क्योंकि 'कहीं नहीं देखे जाते'- यह बात अलौकिकता को सिद्धि का भूषण है, दूषण नहीं"-

"स च न कार्यः, विभावादिनाशेऽपि तस्य सम्भवप्रसङ्गात्। नापि ज्ञाप्यः, सिद्धस्य तस्यासम्भवात्; अपितु विभावादिभिर्व्यञ्जितश्चर्वणीयः। कारकज्ञापकाभ्यामन्यत्र क्व हृष्टमिति चेत्न क्वचिद् हृष्टमित्यलौकिकत्वसिद्ध भुषणमेतन्न दूषणम्" ।

आचार्य अभिनवगुप्त ने रस को अलौकिक कहा है क्योंकि यह लोकिक परिस्थितियों में बद्ध नहीं होता। लोक में दो प्रकार के कारण होते हैं कारक और ज्ञापक और उसके कार्य भी दो होते हैं-कार्य और ज्ञाप्य। आचार्य अभिनवगुप्त का मत है कि रस न कार्य होता है और न ज्ञाप्य होता है। लोक में घट के निर्माण में कुलाल आदि कारण हैं और घट कार्य है, क्योंकि वह कारण से उत्पन्न होता और उसका कारण 'ज्ञापक' कहलाता है। किन्तु रस 'कार्य' नहीं है क्योंकि कारण के नष्ट हो जाने पर भी कार्य रहता है। जैसे 'घट' कार्य कुलालादि के नष्ट हो जाने पर भी विद्यमान रहता है किन्तु रस यदि कार्य मानते हैं तो रस के कारण विभावादि के नष्ट हो जाने पर रस का अस्तित्व होना चाहिए, किन्तु विभावादि के नष्ट

हो जाने पर रसरूप कार्य नहीं रहता अर्थात् रस की प्रतीति नहीं होती। अतः यह कार्य नहीं है। इसी प्रकार रस 'ज्ञाप्य' भी नहीं है क्योंकि ज्ञाप्य पदार्थ ज्ञान के पूर्व विद्यमान रहता है और बाद में भी जैसे 'घट' ज्ञान का विषय 'ज्ञाप्य' है और उसका ज्ञापक दीपक का प्रकाश है अर्थात् दीपक के प्रकाश में घट का ज्ञान होता है अतः घट 'ज्ञाप्य' कहा जाता है। यह घट (ज्ञाप्य) ज्ञान पूर्व में विद्यमान रहता है और ज्ञान के बाद में भी विद्यमान रहता है। किन्तु इसका अस्तित्व न तो अनुभव के पूर्व रहता है और न बाद में। अर्थात् प्रकाश के न रहने पर भी घट की स्थिति तो रहती है किन्तु विभावादि ज्ञापक के न रहने पर रस का अस्तित्व नहीं रहता; अतः रस ज्ञाप्य भी नहीं है। भाव यह कि लोक में समस्त पदार्थ कार्य और ज्ञाप्य होते हैं किन्तु रस न कार्य होता है और न ज्ञाप्य होता है, अपितु उससे विलक्षण अलौकिक होता है। इस प्रकार रस जब कार्य नहीं तो कारक उसका कारण भी नहीं है और रस जब ज्ञाप्य नहीं है तो ज्ञापक उसका कारण भी नहीं हो सकता। यदि यह कह जाय कि कारक और ज्ञापक हेतुओं से भिन्न तीसरा हेतु कहीं देखा गया है तो इसका उत्तर होगा कि कहीं नहीं। यही तो उसकी अलौकिकता है। लोक में कारक और और ज्ञापक हेतुओं से भिन्न तीसरा हेतु नहीं देखा जाता, ये दो ही हेतु देखे जाते हैं, किन्तु रस के व्यंजक हेतु विभावादि उक्त दोनों हेतुओं से विलक्षण है, अलौकिक है इसलिए वह अलौकिकता की सिद्धि का भूषण है दूषण नहीं। अतः रस भी अलौकिक है ।